ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र अथवा जोड़
(RURAL-URBAN INTERACTIONS)

ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र अथवा जोड़ क्या हैं अथवा क्या गाँव सम्पर्क की दृष्टि से विस्तृत जगत से पृथक् है या सम्बन्धित है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देना निश्चित रूप से कठिन है क्योंकि विद्वानों में इसके बारे में सहमति नहीं है। स्वदेशी एवं विदेशी समाजशास्त्रियों में यह एक चर्चा का विषय रहा है कि क्या सामाजिक अनुसन्धान में गाँव अपने आप में एक पृथक् एवं आत्म-निर्भर इकाई है? परन्तु इसका स्पष्ट उत्तर आज तक हमें नहीं मिल पाया है। कुछ विद्वानों (जैसे **रोबर्ट रेडफील्ड**) का विचार है कि गाँव को विस्तृत जगत (अन्य गाँव एवं नगर) से पृथक् किया जा सकता है तथा यह अध्ययन की एक आत्म-निर्भर इकाई हो सकती है, जबकि कुछ विद्वानों (जैसे **डी० एन० मजूमदार**) ने इसके विपरीत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है अर्थात् यह तर्क दिया है कि गाँव को विस्तृत जगत से पृथक् नहीं किया जा सकता, अत: यह अध्ययन की एक इकाई नहीं हो सकती। इन दोनों दृष्टिकोणों की विस्तृत विवेचना अग्रलिखित प्रकार से की जा सकती है—

(अ) गाँव का विस्तृत जगत से सम्पर्क नहीं है

गाँव के विस्तृत जगत के सन्दर्भ में सम्पर्कों के बारे में दिया गया प्रथम दृष्टिकोण गाँव को आत्म-निर्भर इकाई मानता है तथा इस बात पर बल देता है कि यह अध्ययन की एक क्रियात्मक इकाई (Operational unit) है। **रोबर्ट रेडफील्ड** (Robert Redfield) ने गाँव को लघु समुदाय (Little community) कहा है तथा इसकी निम्नलिखित चार प्रमुख विशेषताएँ बताई हैं—

(1) विशिष्टता (Distinctiveness),

(2) लघुता (Smallness),

(3) सजातीयता अथवा एकरूपता (Homogeneity) तथा

(4) आत्म-निर्भरता (Self-sufficiency)।

इन विशेषताओं से ही स्पष्ट हो जाता है कि रोबर्ट रेडफील्ड गाँव को आत्म-निर्भर इकाई मानते हैं तथा इस मत का समर्थन करते हैं कि गाँव को पृथक् इकाई मानकर अध्ययन किया जा सकता है। इससे पहले **सर चार्ल्स मेटकॉफ** (Sir Charles Metcalfe) ने 1832 में भारतीय गाँव को लघु गणतन्त्र (Little republic) की संज्ञा देकर यह बात प्रमाणित करने का प्रयास किया कि गाँव अपने आप में एक पूर्ण इकाई है। उनके अनुसार, ''ग्रामीण समुदाय ऐसे लघु गणतन्त्र हैं जो उन समस्त वस्तुओं, जिन्हें वे चाहते हैं, रखते हैं और प्राय: सभी प्रकार के विदेशी सम्बन्धों से स्वतन्त्र हैं। वे वहाँ तक स्थायी प्रतीत होते हैं जहाँ तक अन्य कुछ भी स्थायी नहीं होता। राजवंश के पश्चात् राजवंश नष्ट हो जाते हैं, क्रान्ति के पश्चात् क्रान्ति आती हैं.........परन्तु ग्रामीण समुदाय वैसा ही रहता है।''

भारतीय विद्वानों में से **प्रो० एम० एन० श्रीनिवास** (M. N. Srinivas) तथा **प्रो० एस० सी० दुबे** (S. C. Dube) का नाम इस दृष्टिकोण के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। एस० सी० दुबे का कहना है कि गाँव मान्य एवं स्थायी पारम्परिक सम्बन्धों द्वारा आर्थिक, सामाजिक एवं संस्कारात्मक दृष्टि से एकीकृत समुदाय है। जजमानी व्यवस्था इसकी एकता का सबसे बड़ा प्रतीक बताया जाता है। एम० एन० श्रीनिवास का कहना है कि गाँव में कुछ अवसरों पर पूर्ण एकता देखी जा सकती है; जैसे अकाल, बाढ़, सूखा, महामारी या आग लग जाने पर, धार्मिक उत्सव या किसी पड़ोसी गाँव से संघर्ष होने पर या सरकार द्वारा कोई ऐसा आदेश पारित करने पर जिससे ग्रामवासी सहमत न हों। साथ ही, उन्होंने भी ग्रामीण समुदाय की भौतिक एवं संस्कारात्मक एकता पर बल दिया है। उनका विचार है कि गाँव आज भी अधिकांशत: आत्म-निर्भर हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा गाँव को 'एक सम्पूर्णता', 'एक पारिस्थितिकीय व्यवस्था', 'एक सामाजिक संस्था' तथा 'समुदाय के अन्तर्गत समुदाय' कहना भी इस बात का प्रतीक है। अत: इन विद्वानों के विचारों को अगर हम सामने रखें तो यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि गाँव अपने आप में अध्ययन की एक पूर्ण एवं पृथक् इकाई है। इसकी पुष्टि हम निम्नलिखित तथ्यों द्वारा कर सकते हैं—

(1) गाँव आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर रहे हैं क्योंकि ग्रामीणवासियों की अधिकांश आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी होती रही हैं।

(2) गाँव धार्मिक दृष्टि से एक रहा है क्योंकि गाँव के देवता (या रक्षकों) की सामूहिक रूप से पूजा की जाती रही है।

(3) गाँव सांस्कृतिक दृष्टि से आत्म-निर्भर एवं पूर्ण रहे हैं क्योंकि बृहत् (महान्) परम्पराओं का पालन सभी ग्रामवासी करते थे।

(4) भौगोलिक दृष्टि से गाँव पूर्ण एवं पृथक् रहा है क्योंकि प्रत्येक गाँव की निश्चित सीमाएँ होती हैं।

(5) राजनीतिक दृष्टि से भी गाँव पूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि प्रारम्भ से ही गाँव पंचायत द्वारा गाँव में होने वाले लड़ाई-झगड़ों के निपटारों का उल्लेख मिलता है।

(ब) गाँव का विस्तृत जगत से सम्पर्क रहा है

अनेक विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि गाँव कभी भी अपने में पूर्ण एवं आत्म-निर्भर नहीं रहे हैं तथा वास्तव में गाँव को सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक दृष्टि से विस्तृत जगत से पृथक् करना सम्भव नहीं है। **डी० एन० मजूमदार** (D. N. Majumdar) का इस सन्दर्भ में यह कहना है कि गाँव स्वयं में निहित एक इकाई नहीं है क्योंकि प्रत्येक गाँव की एक मूल्य व्यवस्था होती है, एक भूतकाल होता है जो कि गाँवों के चारों कोनों तक ही सीमित नहीं है। अत: गाँव का अध्ययन एक पूर्ण समूह के रूप में अर्थात् भौतिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक पहलुओं तथा औद्योगीकरण एवं नातेदारी व्यवस्था के रूप में नहीं किया जा सकता। **मैकिम मेरियट** (McKim Marriott), **डेनियल थार्नर** (Daniel Thorner) इत्यादि विदेशी विद्वानों ने भारतीय गाँवों के अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि गाँव सदैव विस्तृत जगत से सम्बन्धित रहे हैं और इन्हें विस्तृत जगत से पृथक् नहीं किया जा सकता। मैकिम मेरियट का कहना है कि किशनगढ़ी एक पृथक् सम्पूर्ण से पर्याप्त कम है क्योंकि इसकी परिभाषित सीमाएँ नहीं हैं, सामाजिक व्यवस्था अपने केन्द्र बिन्दु से बाहर तक फैली हुई है और ग्रामवासियों पर बाहरी जगत के लोगों का अत्यधिक प्रभाव है। उनका कहना है कि भारतीय गाँव विवाह एवं नातेदारी संगठन, निवास स्थान के प्रतिमानों (Residence patterns), संघर्ष के स्वरूपों अथवा जातीय संगठनों की दृष्टि से स्वयं में पृथक् वस्तु नहीं हो सकते। न ही भारतीय गाँव भारतीय सभ्यता के प्रारम्भ से ही कभी पृथक् रूप से दिखाई देने योग्य रहे हैं।

एम० एन० श्रीनिवास ने आधुनिक भारत के गाँव के सन्दर्भ में यह कहा है कि पूर्ण रूप से स्वावलम्बी ग्राम गणतन्त्र (Village republic) एक कल्पना मात्र है, यह सदैव एक बृहत् सत्ता (Wider entity) का हिस्सा रहा है। केवल अंग्रेजी शासनकाल से पहले भारतीय गाँव, आज के गाँवों की अपेक्षा, कस्बों पर आर्थिक दृष्टि से कम निर्भर थे।

यदि हम समकालीन भारतीय समाज में ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्रों अथवा जोड़ को देखें तो यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि गाँव अपने में पूर्ण इकाई नहीं है तथा यह विविध प्रकार से बाहरी जगत से जुड़ा हुआ है। गाँव बाहरी अथवा विस्तृत जगत से पृथक् नहीं है (अथवा अपने में पूर्ण नहीं है), इसे हम निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं—

(1) ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र के सामाजिक आधार (Social bases of rural-urban interactions)—भारतीय ग्रामीण समुदायों में प्राय: ग्राम बहिर्विवाह का नियम (Village exogamy) रहा है। गाँव के लड़के-लड़कियों की शादी गाँव से बाहर होती है। अत: गाँव परस्पर नातेदारियों से बँध जाते हैं। इतना ही नहीं, कभी-कभी बाहर के लड़के घर जँवाई के रूप में गाँव में आकर बसते रहे। इसके अतिरिक्त, जाति के आधार पर भी बाह्य ग्रामों के साथ परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। अनेक जातियाँ ऐसी हैं जो कुछ निश्चित गाँवों में अपनी बिरादरी-पंचायत, कुदरिया, चौखला या खॉप जैसे संगठन बना लेती हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटों में वंश के आधार पर अनेक गाँवों की एक 'देश खॉप' या 'सर्वखॉप' बनाई जाती है जो बड़ी शक्तिशाली संरचना है।

(2) ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र के आर्थिक आधार (Economic bases of rural-urban interactions)—ग्रामीण क्षेत्रों के परम्परागत हाट व बाजार कई ग्रामों के लोगों के मिलने के स्थल थे। इसी भाँति, पशु-मेले जैसे विशिष्ट बाजार पूरे क्षेत्र के लोगों के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। घूमने वाली दुकानें नई वस्तुओं के बारे में ग्रामीणों के लिए जानकारी का स्रोत थीं। इसके अतिरिक्त, जब कोई नया गाँव बसता था तो वहाँ सेवक जातियों अथवा कामगारों को बाहर से लाया जाता था। धीरे-धीरे ऐसे बाहरी लोग गाँव

के सदस्य के रूप से वहाँ के स्थायी निवासी बन जाते थे। इस भाँति, सुनार, लोहार जैसी अनेक जातियाँ एक गाँव में ही नहीं, बल्कि एक से अधिक गाँवों को अपनी सेवाएँ प्रदान करती थीं।

(3) ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र के धार्मिक आधार (Religious bases of rural-urban interactions)—किसी गाँव का कोई महात्मा अथवा पूजा-स्थल प्रसिद्ध हो जाते थे और पड़ोस के अनेक गाँवों के लोग उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने अथवा रोग से मुक्ति प्राप्त करने या भूत-बाधा से छुटकारा पाने या अन्य किसी आपदा से बचने के उपाय हेतु या ज्ञान अथवा शान्ति की खोज में उनके पास आते जाते रहते थे। प्राय: पुरोहितों के जजमान भी एक से अधिक गाँवों में फैले होते थे। धार्मिक मेले (देवी-देवताओं से सम्बन्धित) और तीर्थ-प्रथा, जैसे कि पास की किसी नदी पर नियतकालिक स्नान-मेला आदि भी ग्रामीण-नगरीय अन्तर्क्रिया के आधार थे। संन्यासियों की प्रथा भी परम्परागत जन संचार के महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में क्रियाशील रही है।

(4) ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र के राजनीतिक आधार (Political bases of rural-urban interactions)—राज्य का सम्पर्क सदा ही ग्रामों से रहा है। लगान उगाहने की दृष्टि से कोई न कोई व्यवस्था गाँव और राज्य को परस्पर जोड़ती रही है। ऐसी व्यवस्था के रूप में नवाबों, जागीरदारों, जमींदारों को गिनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, एक जाति-बहुल क्षेत्रों में, जाति की वृहद् पंचायतों का भी पता चलता है, जैसे चौबीस गाँवों की चौबीसी या साठ गाँवों का साठा। सिंचाई के साधनों पर भी राज्य का नियन्त्रण रहा है। सेना के लिए भी भर्ती प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों से होती है। प्रशासन व सेना के केन्द्र नगरों में थे और गाँव उनके नियन्त्रण-क्षेत्र की इकाइयाँ थे।

(5) ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र के सांस्कृतिक आधार (Cultural bases of rural-urban interactions)—**ब्रज राज चौहान** के शब्दों में, ''सांस्कृतिक जीवन भी प्रादेशिक परम्पराओं को आगे बढ़ाता है। किसी नगर की रासलीला प्रसिद्ध है, तो कहीं की रामलीला, या कहीं की झाँकियाँ। इन्हीं नगरों में पूजा की सामग्री, शंख, माला, घंटियाँ मिलती हैं; और भजन या धार्मिक कथाओं की पुस्तकें।'' आस-पड़ोस के ग्रामीण इन सभी सांस्कृतिक कारकों के कारण भी नगरों में आते रहे हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय गाँव एवं नगर कभी भी पूर्णतया आत्म-निर्भर, पृथक् और एकाकी नहीं रहे हैं। उनके बीच सम्पर्क-सूत्र अथवा अन्तर्क्रियाओं का सातत्य रहा है। **मैकिम मेरियट** ने इन्हीं सम्पर्कों के आधार पर ही महान् सांस्कृतिक परम्पराओं के स्थानीयकरण (Parochialization) और लघु परम्पराओं के सार्वभौमिकरण की प्रक्रियाओं का वर्णन किया है। **एम० एन० श्रीनिवास** ने यह सिद्ध किया है कि निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों का अनुकरण कर उच्चता का दावा प्रस्तुत करना, अर्थात् संस्कृतिकरण भी ऐसे सम्पर्कों के कारण ही है। यह बात सही है कि ऐसी अन्तर्क्रियाएँ पहले इतनी गहन और व्यापक नहीं थीं जितनी कि आज हैं। आधुनिक युग में ग्रामीण-नगरीय अन्तर्क्रियाओं का व्यापक गहनीकरण हुआ है। नई संरचना और विकास कार्यक्रमों ने उनके बीच तीव्रता से अन्तर्क्रियाओं को बढ़ाया है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सामुदायिक विकास कार्यक्रम, परिवार नियोजन, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित नियतकालिक चुनाव, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, दलगत राजनीति, सरकार की अनुसूचित जातियों व जनजातियों के उत्थान के लिए अपनायी गई सुरक्षात्मक भेदभाव की नीति तथा समाज कल्याण सम्बन्धी अनेक योजनाओं आदि ने ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र को तीव्रतर कर दिया है। आधुनिक युग में इन सम्पर्क-सूत्रों या अन्तर्क्रियाओं के गहनीकरण के कारकों की तनिक विस्तार से चर्चा करना सन्दर्भ से परे नहीं होगा क्योंकि उन्हीं के प्रकाश में हम सम-सामयिक स्थिति को यथार्थ रूप से समझ सकते हैं।

सम-सामयिक भारत में ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र के गहनीकरण के लिए उत्तरदायी कारक

समकालीन भारत में ग्रामीण-नगरीय सम्पर्क-सूत्र एवं अन्तर्क्रियाओं के व्यापीकरण और गहनीकरण के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हैं—

(1) विकास कार्यक्रम (Development programmes)—आजादी के बाद भारतीय समाज के विकास के लिए योजनाबद्ध प्रयासों की शुरुआत हुई। विकास के लक्ष्य प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत उद्योगवाद व समाजवाद लाना रखे गए। पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया। परिणामस्वरूप गाँवों और

जनजातीय क्षेत्रों में विकास-खण्डों की स्थापना की गई। इससे जनजातियाँ और ग्रामवासी विकास सम्बन्धी नई संरचनाओं, जैसे खण्ड-विकास अधिकारी, सहायक विकास अधिकारी आदि के सम्पर्क में आए। जन-सहभागिता को विकास का आधार माना गया। विकास-खण्डों के मुख्यालय नगरों में ही हैं। परिवार नियोजन इन कार्यक्रमों का अभिन्न अंग है। इन सभी प्रयासों से नवीन विचारधाराओं और यन्त्रों का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवेश हुआ है तथा उनकी बाह्य जगत से अन्तर्क्रिया बढ़ी है और गहरी हुई है।

(2) नवीन संस्थाओं का प्रवेश (Introduction of new institutions)—ग्रामों में कुछ नवीन संस्थाओं का भी प्रवेश हुआ है, जैसे प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, स्कूल, यातायात के साधन, बिजली व डीजल जैसे ऊर्जा के अजैविक साधन। इनके अतिरिक्त, बैंकों की गतिविधियाँ भी गाँवों में बढ़ी हैं। स्पष्ट है कि ये सभी शहरी संस्थाएँ गाँव में भी नगरीय जीवन-शैलियों का प्रभाव बढ़ा रही हैं। जनजातीय और ग्रामीण परम्पराएँ बिखरने लगी हैं। उपर्युक्त तीनों इकाइयों के बीच अन्तर्क्रियाएँ गहनतर हो गई हैं। इन नवीन संस्थाओं के कर्मचारी प्रशिक्षित हैं और प्राय: शहरों से सम्बन्धित हैं। इनके क्षेत्रीय कार्यालय भी शहर में हैं, जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीणों को अनेक बार इन कार्यालयों में जाना पड़ता है।

(3) कल्याण सम्बन्धी गतिविधियाँ (Welfare activities)—राज्य में जनजातियों, अनुसूचित जातियों और भूमिहीन मजदूरों के उत्थान के लिए अनेक कल्याण की योजनाएँ बनाई गई हैं। कुछ क्रान्तिकारी कदम भी उठाए गए हैं, जैसे 1955 ई० में अस्पृश्यता को अपराध घोषित किया गया। इसी प्रकार, जमींदारी प्रथा का भी उन्मूलन किया गया। सुरक्षात्मक भेदभाव की नीति के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों और जातियों के लिए शिक्षा संस्थाओं में, विधानसभाओं में तथा सरकारी सेवाओं में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था की गई है। इतना ही नहीं, वरन् मकानों या कुओं के लिए अनुदान तथा अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की गई है। भूमिहीन मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम भी लागू किया गया है। इन सभी कल्याणकारी कदमों ने परम्परागत सामाजिक संरचना पर प्रहार किए हैं और ग्रामीण-नगरीय सम्पर्कों की आवश्यकता को बढ़ा दिया है।

(4) नवीन राजनीतिक प्रक्रियाएँ (New political processes)—आजादी के बाद भारतीय संविधान में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रजातान्त्रिक संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। इस भाँति, नियतकालिक चुनावों एवं दलगत राजनीति के आधार पर नवीन राजनीतिक प्रक्रियाओं का प्रादुर्भाव हुआ है। ये प्रक्रियाएँ लहर की भाँति जनजातियों और ग्रामीणों तक भी पहुँची हैं। अपने लिए आधार की खोज में राजनीतिक दलों ने जाति, नातेदारी, धर्म जैसी परम्परागत संरचनाओं का सहारा लिया है। धीरे-धीरे इन परम्परागत संरचनाओं ने भी राजनीतिक लाभों को पहचाना है और उनका राजनीतिकरण हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में नए राजनीतिक गठबन्धन उभरे हैं और ग्रामीण-नगरीय अन्तर्क्रियाओं के लिए स्थायी आधार बन गए हैं। इसी क्षेत्र में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की चर्चा भी की जा सकती है। पंचायती राज के तिमंजिले ढाँचे ने गाँव को बाह्य जगत से सम्पर्क-सूत्र दिया है। ग्राम पंचायत खण्ड-विकास समिति से जुड़ी है और खण्ड-विकास समितियाँ जिला परिषद् से जुड़ी हैं। न्याय पंचायतें एक से अधिक गाँव को मिलाकर बनाई जाती हैं। जिला पंचायत राज अधिकारी, जिसका कार्यालय जिला केन्द्र पर होता है, इन स्थानीय इकाइयों की देखभाल करता है।

ग्रामीण-नगरीय अन्तर्क्रियाओं के इस व्यापीकरण एवं गहनीकरण के परिणामस्वरूप नए सामाजिक सम्बन्धों के प्रतिमान स्थापित हुए हैं, कुछ नवीन सामाजिक समस्याओं का भी जन्म हुआ है। इन अन्तर्क्रियाओं के परिणामस्वरूप सम्बन्धों के जो प्रतिमान उभरे हैं वे सहयोगी भी हैं और शोषक भी हैं। सहयोग की दृष्टि से यदि देखा जाए तो नवीन संस्थाओं एवं संरचनाओं ने ग्रामीणों के जीवन में विकास के नए अवसरों को प्रस्तुत किया है। परम्परागत शोषक संरचनाओं, जैसे जमींदार या साहूकार वर्ग का वर्चस्व समाप्त हुआ है। परन्तु साथ ही, कुछ अधिकारीगण या नए ठेकेदार गाँव के लोगों का शोषण भी कर रहे हैं। इनके सम्पर्क अधिकतर समृद्ध किसानों से ही हैं। यह नया गठबन्धन पिछड़े हुए वर्ग को पहले की अपेक्षा और भी निराश्रित बनाता है क्योंकि परस्पर सहायता के परम्परागत नियम-बन्धन इन पर लागू नहीं होते हैं।

गाँवों में भी खेती का व्यवसायीकरण हुआ है। नए बीज, नई रासायनिक खादों व ट्रैक्टरों, जल-पम्पों के प्रयोग ने परम्परागत तरीकों को बिलकुल बदल दिया है। अब नकद-फसलों का प्रचलन बढ़ गया है। इससे ग्रामीणों की शहरों पर निर्भरता बढ़ी है। मैकेनिकों, यन्त्रों आदि के लिए वे शहरों पर आश्रित हैं। यही नहीं, उनकी फसल के लिए बाजार भी शहरों में ही उपलब्ध हैं। इन कारणों से अर्थव्यवस्था का द्रव्यीकरण

(Monetization) हो गया है। धन का प्रभाव बढ़ा है। स्पष्ट है कि इससे अधिक लाभ पहले से ही सम्पन्न किसानों को ही पहुँचा है।

संयुक्त परिवार, नातेदारी एवं जजमानी व्यवस्था ग्रामीण जीवन की आधारभूत सामाजिक संस्थाएँ रही हैं। वे ही सामाजिक सुरक्षा व बीमे का कार्य भी करती हैं। जजमानी व्यवस्था रोजगार की गारण्टी देने वाली संस्था थी। ग्रामीण-नगरीय अन्तर्क्रियाओं के परिणामस्वरूप इन संस्थाओं के महत्त्व और सामाजिक भूमिका में ह्रास हुआ है। इनके स्थान पर व्यक्तिवादिता तथा औपचारिक संस्थाओं की क्रियाशीलता बढ़ गई है। जातिगत व्यवसाय को अपनाने की अनिवार्यता के समाप्त हो जाने से जजमानी व्यवस्था का ह्रास हुआ है। अर्थव्यवस्था के द्रव्यीकरण ने भी इस ह्रास में योगदान दिया है। बाजार-बल परम्परागत आदान-प्रदान के सम्बन्धों पर हावी होने लगे हैं। रोजगार के अवसरों की प्राप्यता ने ग्राम से नगरों की ओर प्रवास की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया है।

ग्रामीण क्षेत्रों पर नगरवाद का प्रभाव बढ़ रहा है। गाँव में टी स्टाल खुले हैं और विवाह-शादी में भी शहरों की तरह ही कार्यक्रम रखा जाता है या दहेज आदि का सामान दिया जाने लगा है। घरों की साज-सज्जा एवं खान-पान पर भी प्रभाव पड़ा है। सामाजिक जीवन में नैटवर्क्स की भूमिका बढ़ गई है। नैटवर्क्स उन सम्बन्धों को कहते हैं जिनका निर्माण कोई व्यक्ति या समूह किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करता है। वास्तव में, ये सामाजिक समूह हैं। विशिष्ट कार्य सम्पन्न होने के बाद उनका विघटन प्रारम्भ हो जाता है। **श्रीनिवास** तथा **आन्द्रे बेतेई** ने इनका अध्ययन किया है। **ब्रज राज चौहान** के शब्दों में, ''अपरिचित व्यक्तियों, परिस्थितियों से सम्पर्क-सूत्र बनाने में नैटवर्क की विशिष्टता है। इन्हें सम्पर्क-सूत्र या सम्पर्क-सूत्र भी कहा जा सकता है। जहाँ सामाजिक संरचना व संस्थागत उपायों से समस्याओं के हल कमजोर पड़ते हैं, वहाँ सम्पर्क-सूत्र (Net-works) क्रियान्वित किए जा सकते हैं और भारतीय ग्रामों में राजनीतिक गतिविधियाँ इस श्रेणी में आती हैं।''

इस भाँति, हम देखते हैं कि ग्रामीण-नगरीय अन्तर्क्रियाओं ने भारतीय सामाजिक परिदृश्य को काफी सीमा तक प्रभावित एवं परिवर्तित किया है। इनके सकारात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के परिणाम हुए हैं। ●